वर्ष : ३५
अंक : ०३

तित्थयर

मूल्य : ५०.०० रुपये
जून २०११

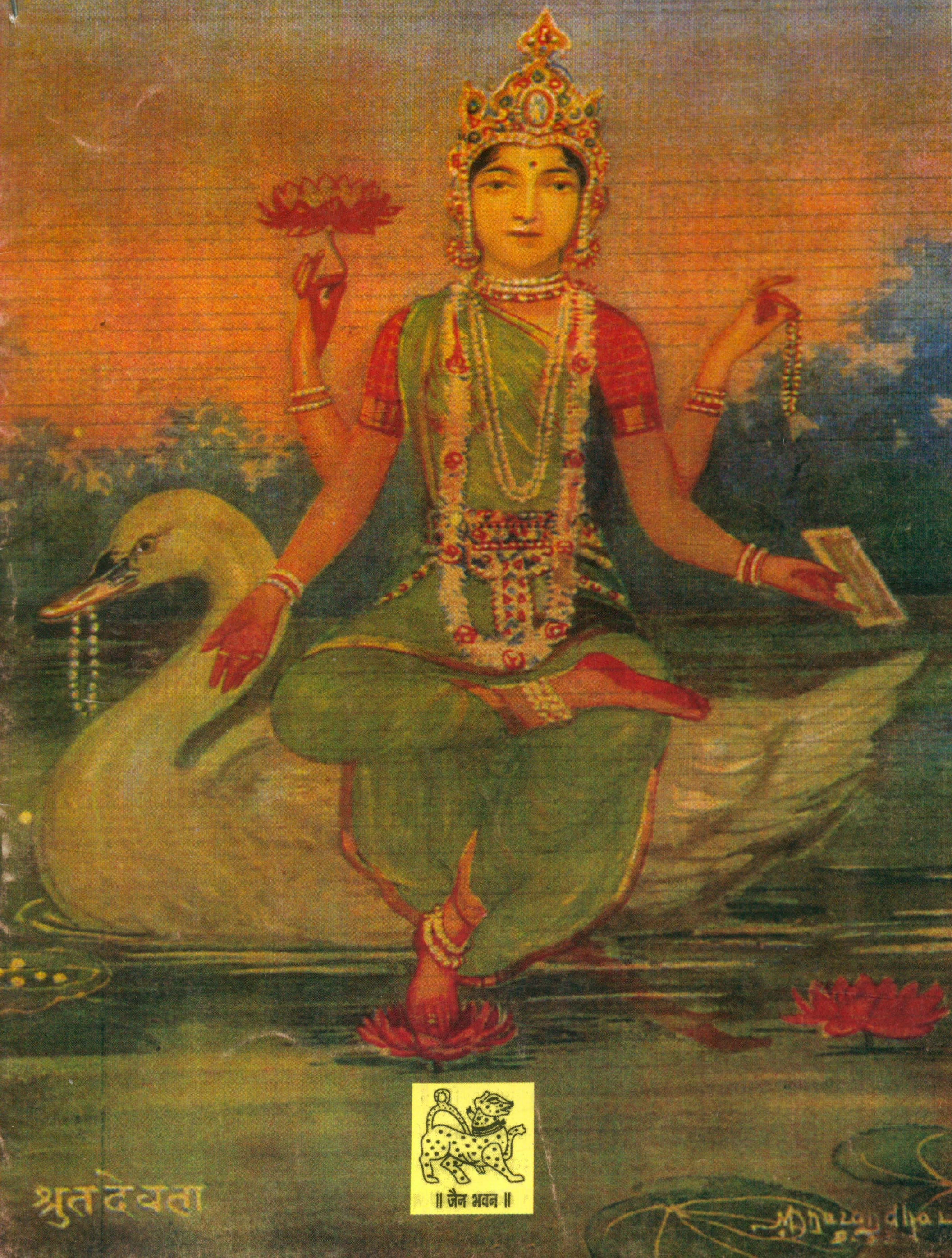

॥ जैन भवन ॥

Courtesy :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट — अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा — कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़ — सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३५ | अंक - ३ जून | २०११

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - **Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007**
Phone : 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा.

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	मुगल काल में जैन धर्म एवं आचार्य परम्परा	नीना जैन	७७
२.	जैन ज्योतिष साहित्य	स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य	८७
३.	हरिश्चन्द्र तारा		९९

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

मुगल काल में जैन धर्म एवं आचार्य परम्परा

नीना जैन

भगवान महावीर स्वामी की पट्ट परम्परा में अनेक गच्छों क जन्म हुआ। ये गच्छ परम्परा जैन धर्म में साधना का एक सोपान थी मत विभिन्नता के कारण गच्छ परम्परा को अनेक भागों में बांट दिय गया लेकिन प्रमुख परम्परा में दो को ही प्रमुख स्थान मिलाः–

1. तपागच्छ
2. खरतरगच्छ

तपागच्छ की उत्पत्ति :– संवत 1273 (सन् 1216) में श्री जगच्चन्द्रसूरिश्व ने बारह वर्ष पर्यन्त आयंबिल[1] तप की आराधना की इस तप के प्रता से पृथ्वी पर कलंक का नाश हुआ अर्थात् वह तपा ऐसी ख्याति संसा में प्रकट हुई। इस तरह संवत 1285 (सन् 1228) के साल रं श्रीजगच्चंद्रसूरि से जगत में तपागच्छ की प्रसिद्धि हुई।

मुगलकाल में इस गच्छ में प्रमुख आचार्य विजयदानसूरि विजयहीरसूरि, विजयसेनसूरि और विजयदेवसूरि हुए।

1. विजयदानसूरि :–

ये आनन्द विमल सूरिजी के पट्टधर थे इसका जन्म संवत् 1553 (सन् 1496) में अहमदाबाद के जामला नामक गांव में हुआ। 9 वर्ष क उम्र यानि संवत् 1562 (सन् 1505) में आनन्दविमलसूरिजी से दीक्ष ग्रहण की। उस समय साधु समाज में बहुत शिथिलाचार प्रवेश कर गय

---

1. ऑबिल जैनियों की एक तपस्या विशेष का नाम है, इस तपस्या के दिन केवल एक ही वक्त नीरस, घी, दूध, दही, गुड़ आदि वस्तुओं से रहित भोजन किय जाता है।

था। जिस समय आनन्दविमलसूरिजी ने विजयदानसूरिजी को अपना पट्टधर घोषित किया तो विजयदानसूरिजी ने सर्वप्रथम साधु समुदाय को जैन साधुओं के नियमानुसार चलने के लिये एवं साधु समाज को संगठित करने के लिये अधिक परिश्रम किया। न केवल साधु समाज अपितु उस समय देश की हालत भी बहुत ही शोचनीय थी। राजा महाराजा आपस में लड़-लड़कर अपनी शक्ति को क्षीण कर रहे थे। उसी का लाभ उठाकर मुगल साम्राज्य भारत में अपनी शक्ति बढ़ाने और पूरे भारत को अपने कब्जे में करने की कोशिश में लगा हुआ था। ऐसी परिस्थिति में जैन मंदिर और जैन पुस्तकों, भण्डारों को भी बहुत क्षति होने का डर था, जिनको सुरक्षित कराने में जैन समाज को भी उन्होंने संगठित किया और उनके संरक्षण की व्यवस्था कराई।

इस तरह सूरिजी इस भू-मण्डल में अनेक जीवों को शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए विचरते रहे। विहार करते हुए एक समय सूरिजी अजमेर दुर्ग पहुँचे, तो वहाँ के लोगों ने उन्हें भूतपिशाच वाला मकान ठहरने के लिए दिखाया सूरिजी ने अपने शिष्यों के साथ उसी में निवास किया। उस मकान में रहने वाले दुष्ट देवों ने अनेक प्रकार के वीभत्स रूपों को धारण करके साधुओं को डराना शुरू किया। जब सूरिजी को यह बात पता चली तो एक रात वे निद्रा न लेकर सूरि मंत्र का ध्यान लगाकर बैठ गये। उनके सामने देवता लोग आकर अनेक प्रकार की चेष्टायें करने लगे लेकिन सारी चेष्टाएं सूरिजी के सामने व्यर्थ हो गई। जब नगरवासियों को यह विश्वास हुआ कि सूरिजी के प्रभाव से व्यंतरों का सर्वदा के लिए विघ्न दूर हो गया तो वे मुक्त कंठ से सूरिजी की प्रशंसा करने लगे।

इस तरह जैन शासन को उन्नति के शिखर पर छोड़कर वैशाख सुदी बाइस संवत 1622 (सन् 1565) के बड़ावली (पाटन के पास) गांव में वे स्वर्ग चले गये।

आचार्य विजयदानसूरिजी की समाज को महान देन आचार्य हरिविजयसूरिजी जैसे रत्न को देना है जिन्होंने मुगलकाल में जैनों के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्य प्रजा की रक्षा के लिए महान कार्य किये।

2. आचार्य हीरविजयसूरि—

हीरविजयसूरिजी का जन्म मगरूर सुदी नवमी 1583 (सन् 1526) को पालनपुर के ओसवाल परिवार में हुआ। इनके पिता कुंराशाह तथा माता नाथीबाई ने इनका नाम **हीरजी** रखा। 13 वर्ष की उम्र में कार्तिक बदी दूज सम्वत् 1596 (सन् 1539) को पाटन से आपने आचार्य विजयदानसूरि से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम **हीरहर्ष** रखा गया। दीक्षा के बाद सूरिजी के मन में आपको **न्यायशास्त्र** में पारंगत करने की भावना आई, गुरु की आज्ञा से धर्म सागरजी और राजविमलजी को साथ लेकर **हीरहर्ष** मुनि देवगिरी (दौलताबाद) न्यायशास्त्र का अध्ययन करने गये और न्यायशास्त्र के कठिन से कठिन ग्रन्थों का अध्ययन किया, अध्ययनपूर्ण हो जाने पर जब वापिस गुरु के पास आये तो गुरु ने हीरहर्ष की योग्यता देखकर सम्वत् 1607 (सन् 1550) में नारदपुरी (नाडलाई) मारवाड़ में पण्डित पद दिया और उसी गाँव में अगले वर्ष उपाध्याय पद प्रदान किया। पौष सुदी पंचमी सम्वत् 1610 (सन् 1553) को सिरोही (मारवाड़) में आचार्य पद से विभूषित कर इनका नाम हीरविजयसूरि रखा (जैन साधुओं की ऐसी परम्परा है कि आचार्य पदवी मिलने के बाद नाम बदल दिया जाता है)।

अब हीरविजयसूरिजी ने अपने गुरु के साथ पाटन की तरफ विहार किया। पाटन पहुँचने पर आचार्य विजयदानसूरि ने हीरविजयसूरि को अपना पट्टधर घोषित किया। इस अवसर पर वहाँ के सूबेदार शेरखान के मंत्री भंसाली समरथ ने अतुल धन खर्च किया। सम्वत् 1622 (सन् 1565) में गुरुजी के काल कर जाने से आप गच्छाधिपति बन गये और देश में विचरण करने लगे।

जिस समय बादशाह अकबर ने हीरविजयसूरिजी को अपने दरबार में आमंत्रित किया उस समय वे गुजरात के गंधार प्रान्त में थे। बादशाह का निमंत्रण मिलने पर उन्होंने आस-पास के शहरों के जैन संघ के प्रमुख श्रावकों से परामर्श किया और श्रीसंघ की इच्छानुसार फतेहपुर सीकरी के लिए विहार किया। विभिन्न स्थानों पर धर्मोपदेश देते हुए उन्हें महाराणा प्रताप का भी निमंत्रण मिला था कि मेवाड़ में पधारकर धर्मोपदेश देने की कृपा करे।

जिस समय सूरिजी बादशाह के दरबार में पहुँचे उस समय उसके साथ सैद्धान्तिक शिरोमणि उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि शतावधानी, श्रीशान्तिचन्द्रगणि, पं. सहजसागरगणि, पं. सिंहविमलगणि, पं. हेमविजयगणि, व्याकरण चूड़ामणि पं. लाभविजयगणि आदि तेरह साधू थे। अपनी विद्वद मंडली के साथ सूरिजी को आते देखकर बादशाह ने विनयपूर्वक सामने जाकर कुशल क्षेम पूछने के साथ ही सूरिजी को नमस्कार किया। सूरिजी ने **धर्मलाभ**[1] देकर राजा को संतुष्ट किया।

बादशाह को उपदेश देकर सूरिजी ने लोककल्याण तथा जीवदया के जो कार्य करवाये वे केवल जैनों के लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश की प्रजा के हितार्थ थे।

सूरिजी में विनय, विवेक, समभाव और क्षमा जैसे उच्चतम गुणों का भंडार था। गुजरात जैसे परम श्रृद्धालु प्रदेश को छोड़ना, अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हुए फतेहपुर सीकरी तक जाना, चार वर्ष तक वहां रहना अकबर जैसे बादशाह को अपना भक्त बनाना और सारे साम्राज्य में छः महीने तक जीव हिंसा बन्द करवाना उनके जीवन की सार्थकता दर्शाते हैं।

सूरिजी में जैसी गुण ग्राहकता थी वैसी ही लघुता भी थी यद्यपि

---

1. जैन साधु जब किसी को आशीर्वाद देते हैं तो यही शब्द **धर्मलाभः** कहते हैं।

अकबर ने जीव दया से सम्बन्ध रखने वाले और इसी तरह के जो काम किये थे, उन सबका श्रेय हीरविजयसूरिजी को ही है फिर भी वे हमेशा यही समझते थे कि मैंने जो कुछ किया है या करता हूँ, यह तो मेरा कर्तव्य है। एक बार एक श्रावक ने अकबर को अभक्ष्य छुड़ाने में उनकी प्रशंसा की तो सूरिजी ने कहा कि **जगत के सब जीवों को सन्मार्ग पर लाना ही तो हमारा धर्म है, हम तो केवल उपदेश देने के अधिकारी है। हजारों को उपदेश देने पर भी लाभ तो बहुत ही कम मनुष्यों को होता है। अकबर ने जो काम किये है इसका कारण तो उसका स्वच्छ अन्तः करण ही है। श्रेष्ठ कार्य में याचना करने वाले की अपेक्षा दान देने वाले की कीर्ति विशेष होती है। मैंने तो मांगकर अपना कर्तव्य पूरा किया और बादशाह ने देकर उदारता दिखाई, कार्य करने की अपेक्षा उदारता दिखाना अधिक श्रेष्ठ है।** सूरिजी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि उनमें कितनी लघुता था, वे निरभिमानी थे।

सूरिजी ने जैसे उपदेशादि बाह्य प्रवृत्तियों से अपने जीवन को सार्थक किया था वैसे ही बाह्य प्रवृत्ति की पूर्ण सहायक-कारण आध्यात्मिक प्रवृत्ति को भी वे भूले न थे। समय-समय पर एकान्त में बैठकर घण्टों ध्यान किया करते थे। रात्रि के पिछले पहर में (यह समय योगियों के ध्यान के लिए अपूर्व गिना जाता है) उठकर ध्यान तो वे नियमत रूप से लगाया ही करते थे। इस तरह आध्यात्मिक प्रवृत्ति से और उपदेशादि बाह्य प्रवृत्ति दोनों की तरह से उनका जीवन जनता के लिए आशीर्वाद रूप था।

इस तरह दोनों प्रवृत्तियों से जीवन को सार्थक बनाते हुए सूरिजी गुजरात में विहार कर रहे थे कि अचानक ऊना के सम्वत् 1651 (सन् 1594) के चातुर्मास में वे अस्वस्थ हो गये। इसलिए चातुर्मास के बाद श्रीसंघ ने उन्हें विहार नहीं करने दिया। श्रीसंघ के आग्रह पर भी किसी तरह की औषधि का सेवन नहीं किया उनका विचार था कि बाह्य उपचार

और औषधि की अपेक्षा धर्म रूपी औषधि का ही सेवन करना चाहिए। दिन पर दिन सूरिजी की रुग्णता बढ़ती गई फिर भी सम्वत् 1652 (सन् 1595) में पर्यूषणों में कल्पसूत्र (धार्मिक वांचन) उन्होंने ही वांचा। भादवा सुदी ग्यारस सम्वत् 1652 (सन् 1595) के दिन संध्या समय तक सूरिजी अपने ध्यान में बैठे रहे। अपना अन्त समय निकट जानकर अकस्मात आंखे खोलकर अन्तिम शब्दोच्चारण करते हुए सूरिजी ने कहा— भाईयों! अब मैं अपने कार्य में लीन होता हूँ। तुम हिम्मत नहीं हारना। धर्म कार्य करने में वीरता दिखाना। मेरा कोई नहीं, मैं किसी का नहीं हूँ। मेरा आत्मा, ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय है सच्चिदानन्दमय है, शाश्वत है, मैं शाश्वत सुख का मालिक होऊं मैं आत्मा के सिवाय अन्य सब भावों का त्याग करता हूँ। आहार, उपाधि और इस तुच्छ शरीर का भी त्याग करता हूँ। इतना कहकर सूरिजी पदमासन में विराजमान होकर माला करने लगे। चार मालाएँ पूर्णकर जैसे ही पांचवी माला फेरने को हुए कि माला उनके हाथ से गिर पड़ी, लोगों में शोक छा गया। उसी समय भारत को गुरू विरह रूपी बादलों ने आच्छादित कर लिया।

जिस स्थान पर सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ वहाँ एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुआ, कि अगले दिन वहां लोगों ने आम के पेड़ों पर फल देखे। किसी पर मौर के साथ छोटे-छोटे आम थे, किसी पर जाली पड़े हुए आम तो किसी पर पके हुए। कई ऐसे पेड़ भी फलों से भरे हुए थे जिन पर कभी फल आता ही न था। भादों के महीने में वृक्षों पर आम, आश्चर्य नहीं तो और क्या है? निःसन्देह इसे हम सूरिजी के पुण्य प्रताप का फल ही कहेंगे।

बादशाह अकबर के पास भी कुछ आम भेजे गये यद्यपि सूरिजी के स्वर्गवास समाचार से बादशाह को इतना दुःख पहुंचा था कि उसकी आंखों से आंसू निकल पड़े, लेकिन आम्रफलों को देखकर बादशाह को सूरिजी के पुण्य प्रताप पर बहुत अभिमान हुआ।

यहाँ सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ था वहाँ उनका स्तूप बनवाने के लिए जैन संघ ने अकबर बादशाह से भूमि मांगी, जिस बगीचे में सूरिजी का अग्निसंस्कार हुआ था बादशाह ने वह बगीचा और उसके आस-पास की 22 बीघा जमीन जैनों को दे दी। बगीचे में दीवकी लाड़कीबाई ने एक स्तूप बनाकर उस पर सूरिजी की पादुकायें स्थापित कर दी[1]।

निःसन्देह सूरिजी असाधारण विद्वान थे। अबुलफजल, बदायूंनी तथा विन्सेंट स्मिथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्त कंठ से उनका यशोगान किया है। यद्यपि उनके बनाये हुए **जम्बूद्वीप्रज्ञप्तिटीका** और **अन्तरिक्षपार्श्वनाथ स्तव** आदि बहुत ही थोड़े ग्रन्थ उपलब्ध है लेकिन उन ग्रन्थों को देखने और उनके किये कार्यों पर दृष्टि डालने से उनकी असाधारण प्रतिभा में सन्देह का स्थान नहीं रह जाता। उस समय के बड़े-बड़े अजैन विद्वानों के साथ बाद विवाद करने में, समस्त धर्मों का तत्व शोधने में, अकबर जैसे बादशाह पर प्रभाव डालकर सफलता प्राप्त करना असाधारण विद्वान का ही काम हो सकता है। अकबर ने अपनी धर्म सभा के पाँच वर्गों में से पहले वर्ग में उन्हीं लोगों को रखा था जो असाधारण विद्वान थे, यही कारण है कि सूरिजी भी उसी प्रथम वर्ग के सभासदों में थे[2]।

3. आचार्य श्री विजयसेनसूरि—

नाडलाई (मारवाड़) में फागुन सुदी पूनम संवत 1604 (सन् 1547) को कोडिमदे और पिता कूरांशाह के घर उत्तम लक्षणों वाले पुत्र का जन्म हुआ जन्म से ही बालक के मुख पर सूर्य के समान तेज चमकता था। उत्तम लक्षण और चेष्टायें देखकर सामुद्रिक शास्त्री

---

1. हीरसौभाग्यकाव्य-देवविमलगणिविरचित सर्ग 17, श्लोक 192,95।
2. आइने अकबरी—एच. ब्लॉच मैन द्वारा अनुदित पृ. 608,।

लाग कहने लगे कि **यह बालक इस भूण्डल में जीवों को मोक्षमार्ग दिखाने वाला एक धर्म गुरु होगा।** पुत्र को उत्तम लक्षणों से विभूषित देखकर माता-पिता ने उसका नाम **जयसिंह रखा। यही जयसिंह आगे जलकर आचार्य विजयसेनसूरि** के नाम से बिख्यात हुए।

ज्येष्ठ सुदी ग्यारस सम्वत् 1613 (सन् 1556) में सूरत में माता के साथ विजयदानसूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा का नाम **मुनिजयविमल** रखा गया। विजयदानसूरिजी ने दीक्षा देकर आपको हीरविजयसूरिजी का शिष्य घोषित कर दिया। हीरविजयसूरिजी के पास रहकर आपने न्याय, व्याकरण आदि ग्रन्थों का अभ्यास किया। सम्वत् 1626 (सन् 1569) में खम्भात में आपको पंडित पद दिया गया। खम्भात से गुरु के साथ बिहार कर अहमदाबाद आकर चतुर्मास किया। यहां पर फागुन सुदी सात सम्वत् 1628 (सन् 1571) को उपाध्याय एवं आचार्य पद से विभूषित कर **आचार्य विजयसेनसूरि** नाम रखा गया। इस अवसर पर मूला सेठ और वीपापारिख ने महोत्सव किया। आचार्य पदवी के बाद हीरविजयसूरि ने सारी व्यवस्था की देखभाल विजयसेनसूरि को सौंपकर स्वतन्त्र विहार करने की आज्ञा दे दी। वे गांव में विचरण कर धर्मोपदेश देने लगे। अनेक जगह प्रतिष्ठायें करवाई। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी संवत् 1643 (सन् 1586) के दिन गंधार बंदर में **इन्द्रजी** सेठ के घर में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा की प्रतिष्ठा करवाई। दूसरी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ बदी ग्यारस के दिन **धनाई** नाम की श्राविका के मन्दिर में करवाई। गन्धार में ही ज्येष्ठ शुक्ला बारस संवत् 1645 (सन् 1588) का एक मन्दिर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ तथा महावीर स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई।

गन्धार से विहार कर अपने गुरु हीरविजयसूरि के पास राधनपुर आये। सम्वत् 1649 (सन् 1592) का चातुर्मास दोनों आचार्यों ने वहीं

किया यही पर हीरविजयसूरिजी को बादशाह अकबर का पत्र मिला जिसमें विजयसेन सूरि को लाहौर भेजने के लिए लिखा हुआ था।

गुरु की आज्ञानुसार माघ सुदी तीज सम्वत् 1645 (सन् 1592) को विजयसेनसूरि ने लाहौर के लिए विहार कर दिया। मार्ग में पाटण, देलवाड़ा, मन्दिरों के दर्शन करते हुए अपनी जन्म भूमि **नारदपुरी** पधारे यहाँ से मेडता, वैराट महिमनगर होते हुए लाहौर से छः कोस दूर लुधियाना आये। यहां अबुलफजल का भाई फैजी और अनेक लोग सूरिजी के दर्शनार्थ गये। इसी समय सूरिजी के शिष्य नंदिविजयजी ने सब लोगों के सामने अष्टावधान साधा जिसे देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये और जाकर बादशाह से चमत्कार की सराहना की। बादशाह ने नगरवासियों के साथ अपने मंत्री वर्ग को भेजकर सूरिजी का अतिशय सत्कार किया और ज्येष्ठ सुदी बारस के दिन बड़ी धूम-धाम से सूरिजी का नगर में प्रवेश कराया।

हीरविजयसूरिजी की तरह विजयसेनसूरिजी ने भी बादशाह पर बहुत प्रभाव डाला। जैसे चन्द्र की विद्यमानता में आकाश सुशोभित होता है। वैसे ही विजयसेनसूरि को विद्यमानता में लाहौर शहर देदीप्यमान होता रहा। अकबर से जीवदया के कार्य करवाते हुए सूरिजी महिमनगर पधारे।

संवत् 1652 (सन् 1595) में हीरविजयसूरिजी के स्वर्गवास के बाद तपागच्छ का समस्त कार्य श्रीविजयसेनसूरि के सिर पर आ पड़ा। अब वे तपागच्छ रूपी आकाश में सूर्य के समान भव्य जीवों को उपदेश देते हुए विचरने लगे और दिन पर दिन जैन धर्म की शोभा को बढ़ाने लगे।

संवत् 1659 (सन् 1602) का चातुर्मास अहमदाबाद में किया। अहमदाबाद में लोगों ने धर्मोपदेश का अपूर्व लाभ लिया। अहमदाबाद

से राधनपुर होते हुए सूरिजी पाटन आये यहां लुंकामत के मुनि मेघराज[1] सूरिजी के चरण कमल में आये सूरिजी की देशना से लुंकामत का त्यागकर दिया और सूरिजी की शीतलछाया में विचरने लगे।

सूरिजी के एक श्रेष्ठ शिष्य नन्दीविजयजी ने फिरर्गियों को अपने कौशल से प्रसन्न कर लिया था जिससे फिरंगी लोग जिन धर्म में भक्ति रखने लगे थे। इस समय पुनः फिरंगियों में जैन साधुओं से मिलने की तीव्र इच्छा हुई। फिरंगियों के गुरु पादरी ने अपने हाथ से पत्र लिखकर सूरिजी को आमन्त्रित किया, मेघजी के कहने पर फिरंगियों के राजा ने भी एक पत्र लिखा जिससे सूरिजी दीव पधारे। सूरिजी व फिरंगियों के राजा के बीच में हुई धर्म वार्ता से राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आदर के साथ जैन मुनियों को दीव में रहने की सम्मति दी।

क्रमशः

1. यह पहिले पहल लुंकामत को त्याग करने वाले मेघ जी ऋषि का शिष्य था।

जैन ज्योतिष साहित्य

स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

यतियों के लिए संक्षेप में करलक्षणों का वर्णन किया गया है। इन लक्षणों द्वारा व्रत ग्रहण करने वाले की परीक्षा कर लेनी चाहिए। जब शिष्य में पूरी योग्यता हो, व्रतों का निर्वाह कर सके तथा व्रती जीवन की प्रभावक बना सके, तभी उसे व्रतों की दीक्षा देनी चाहिए। अतः स्पष्ट है कि इस ग्रंथ का उद्देश्य जनकल्याण के साथ नवागत शिष्य की परीक्षा करना ही है। इसका प्रचार भी साधुओं में रहा होगा।

ऋषि पुत्र का नाम भी प्रथम श्रेणी के ज्योतिर्विदों में परिगणित है। इन्हें गर्ग का पुत्र भी कहा गया है। गर्ग मुनि ज्योतिष के धुरन्धर विद्वान थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। इनके सम्बन्ध में लिखा मिलता है।

जैन आसीज्जगद्वंद्यो गर्गनामा महामुनि :।
तेन स्वयं निर्णीत यं सत्यापाशास्त्र केवली।।
एतज्ज्ञानं महाज्ञानं जैनर्षिभिरुदाहृतम्।
प्रकाश्य शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मना।।

सम्भवतः इन्हीं गर्ग के वंश में ऋषिपुत्र हुए होंगे। इनका नाम ही इस बात का साक्षी है कि किसी ऋषि के वंशज थे अथवा किसी मुनि के आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे। ऋषिपुत्र का एक निमित्त शास्त्र ही उपलब्ध है। इनके द्वारा रची गई एक संहिता का भी एक मदनरत्न नामक ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है। ऋषिपुत्र के उद्धरण वृत्संहिता की महोत्पली टीका में उपलब्ध है।

ऋषिपुत्र का समय वराहमिहिर के पहले होना चाहिए। क्योंकि ऋषिपुत्र का प्रभाव वराह मिहिरपर स्पष्ट है। यहाँ दो एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया जायेगा।

ससलोहिवण्णहोवरि संकुण इत्ति होइ णायब्बो।
संगामं पुंण घोरं खग्गं सूरो णिवेदई।।

—ऋषिपुत्र निमित्तशास्त्र

शिश रुधिकरनिभे भानौ नभस्थले भवन्ति संग्रामाः।

वराहमिहिर

अपने निमित्त शास्त्र में पृथ्वीपर दिखाई देनेवाले, आकाश में दृष्टिगोचर होने वाले और विभिन्न प्रकार के शब्द श्रवण द्वारा प्रगट होने वाले इन तीन प्रकार के निमित्तों द्वारा फलाफल का अच्छा निरूपण किया है। वर्षोत्पात, देवोत्पात, राजोत्पात, उल्कोत्पात, गन्धर्वोत्पाद इत्यादि अनेक उत्पादों द्वारा शुभाशुभत्वकी मीमांसा बड़े सुन्दर ढंग से की है।

लग्नशुद्धि या लग्नकुंडिका नामकी रचना हरिभद्रकी मिलती है। हरिभद्र दर्शन, कथा और आगम शास्त्र के बहुत बड़े विद्वान थे। इनका समय आठवीं शती माना जाता है। इन्होंने 1440 प्रकरण—ग्रंथ रचे हैं। इनकी अब तक 88 रचनाओं का पता मुन्रि जिन-विजयजी ने लगाया है। इनकी 26 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

लग्नशुद्धि प्राकृत भाषा में लिखी गयी ज्योतिष रचना है। इसमें लग्न के फल, द्वादश भावों के नाम, उनसे विचारणीय विषय, लग्न के सम्बन्ध में ग्रहों का फल, ग्रहों का स्वरूप, नवांश, उच्चांश आदि का कथन किया गया है। जातकशास्त्र या होराशास्त्र का यह ग्रन्थ है। उपयोगिता की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व है। ग्रहों के बल तथा लग्न को सभी प्रकार से शुद्धि— पापग्रहों का अभाव, शुभग्रहों का सद्भाव वर्णित है।

महावीराचार्य : ये धुरन्धर गणितज्ञ थे। ये राष्ट्रकूट वंश के अमोघवर्ष नृपतुंगके समय में हुए थे। अतः इनका समय ई. सन् 850 माना जाता है। इन्होंने ज्योतिष-पटल और गणितसार-संग्रह नामके ज्योतिष ग्रन्थों की रचना की। ये दोनों ही ग्रन्थ गणितज्योतिष के है।

इन ग्रन्थों से इनकी विद्वता का ज्ञान सहज ही में आंका जा सकता है। गणितसार के प्रारम्भ में गणित की प्रशंसा करते हुए बताया है कि गणित के बिना संसार के किसी भी शास्त्र की जानकारी नहीं हो सकती है। कामशास्त्र, गान्धर्व, सूपशास्त्र, वास्तुविद्या, छन्दशास्त्र, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण, कला प्रभृति का यथार्थ ज्ञान गणित के बिना सम्भव नहीं है; अतः गणित विद्या सर्वोपरि है।

इस ग्रन्थ में संज्ञाधिकार, परिकर्मव्यवहार, कलासवर्णव्यवहार, प्रकीर्णव्यवहार, त्रैराशिक व्यवहार, मिश्रकव्यवहार, खातव्यवहार एवं छायाव्यवहार नाम के प्रकरण है। मिश्रकव्यवहार में समकुट्टीकरण, विषयकुट्टीकरण आदि अनेक प्रकार के गणित है। पाटीगणित और रेखागणित की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषताएं है। इसके क्षेत्रव्यवहार प्रकरण में आयत को वर्ग और वर्ग को वृत्त में परिणित करने के सिद्धान्त दिये गये है। समत्रिभुज, विषमत्रिभुज, समकोण, चतुर्भुज, विषयकोण, चतुर्भुत, वृत्तक्षेत्र, सूची व्यास, पंचभुजक्षेत्र एवं बहुभुज क्षेत्रों का क्षेत्रफल तथा धनफल निकाला गया है।

ज्योतिषपटल में ग्रहों के चार क्षेत्र, सूर्य के मण्डल, नक्षत्र और ताराओं के संस्थान, गति स्थिति और संख्या आदि का प्रतिपादन किया है।

चन्द्रसेन : के द्वारा **केवलज्ञान होरा** नामक महत्वपूर्ण विशालकाय ग्रन्थ लिखा गया है। यह ग्रन्थ कल्याणवर्मा के पीछे रचा गया प्रतीत होता है। इसके प्रकरण सारावली से मिलते जुलते हैं पर दक्षिण में रचना होने के कारण कर्णाटक प्रदेश के ज्योतिष का पूर्ण प्रभाव है। इन्होंने ग्रन्थ के विषय को स्पष्ट करने के लिये बीच-बीच में कन्नड़ भाषा का भी आश्रय लिया है। यह ग्रन्थ अनुमानतः चार हजार श्लोकों में पूर्ण हुआ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है—

हीरा नाम महाविद्या वक्तव्यं च भवद्वितम्।
ज्योतिर्ज्ञानैकसारं भूषणं बुधपोषणम् ।।

इन्होंने अपनी प्रशंसा भी प्रचुर परिमाण में की है।

आगमः सदृशो जैनः चन्द्रसेन समो मुनि :।
केवली सद्दशी विद्या दुर्लभा सचराचरे।।

इस ग्रन्थ में हेमकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण वृक्षप्रकरण, कार्पासगुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म-पटप्रकरण, संख्याप्रकरण, नष्टद्रव्य प्रकरण, निर्वाह प्रकरण, अपत्यप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, स्वरप्रकरण, स्वपनप्रकरण, वास्तु प्रकरण, भोजन प्रकरण, देंहलोहदीक्षा प्रकरण, अंजनविद्या प्रकरण एवं विष विद्या प्रकरण आदि है। ग्रन्थ के आद्योपान्त देखने से अवगत होता है कि यह संहिताविषयक रचना है, होरा विषयक नहीं।

श्रीधर : ये ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् है। इनका समय दशवी शती का अन्तिम भाग है। ये कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे। इनकी माता का नाम अम्बोका और पिताका नाम बलदेव शर्मा था। इन्होंने बचपन में अपने पिता से ही संस्कृत और कन्नड़ साहित्य का अध्ययन किया था। प्रारम्भ में ये शैव थे, किन्तु बाद में जैन धर्मानुयायी हो गये थे। इनकी गणितसार और ज्योतिर्ज्ञानविधि संस्कृत भाषा में तथा जातकतिलक कन्नड़-भाषा में रचनाएँ है। गणित सार में अभिन्न गुणक, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, धन, धनमूल, भिन्न, समच्छेद, भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबन्ध, भागमात्रजाति, त्रैराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, भाण्डप्रतिभाण्ड, मिश्रकव्यवहार, भाव्यकव्यवहार, एकपत्रीकरण, सुवर्णगणित, प्रक्षेपक, गणित, समक्रय विक्रय, श्रेणीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, खातव्यवहार, चित्रिव्यवहार, काष्ठकव्यवहार, राशिव्यवहार एवं छायाव्यवहार आदि गणितों का निरूपण किया है।

ज्योतिर्ज्ञानविधि प्रारम्भिक ज्योतिषका ग्रन्थ है। इसमें व्यवहारोपयोगी मुहूर्त भी दिये गये हैं। आरम्भ में संवत्सरो के नाम, नक्षत्र, नाम, योगकरण नाम तथा उनके शुभाशुभत्व दिये गये हैं। इसमें

मासशेष, मासाधिपतिशेष, दिनशेष एवं दिनाधिपति शेष आदि गणितानयनकी अद्भुत प्रक्रियाएँ बतायी गयी है।

जातकतिलक कन्नड़-भाषा में लिखित होरा या जातकशास्त्र सम्बन्धी रचना है। इस ग्रंथ में लग्न, ग्रह, ग्रहयोग एवं जन्मकुण्डली सम्बन्धी फलादेशका निरूपण किया गया है। दक्षिण भारत में इस ग्रंथ का अधिक प्रचार है।

चन्द्रोन्मीलन प्रश्न भी एक महत्वपूर्ण प्रश्नशास्त्र की रचना है। इस ग्रंथ में कर्त्ता के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नहीं है। ग्रन्थ को देखने से यह अवगत अवश्य होता है कि इस प्रश्न प्रणाली का प्रचार खूब था। प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नवर्णों का संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, अभिधूमित, आलिंगित और दग्ध इन संज्ञाओं में विभाजन कर प्रश्नों का उत्तर में चन्द्रोन्मीलन का खण्डन किया गया है। **प्रोक्तं चन्द्रोन्मीलनं शुक्लवस्त्रैस्तच्चाशुद्धम्** इससे ज्ञात होता है कि यह प्रणाली लोकप्रिय थी। चन्द्रोन्मीलन नामका जो ग्रन्थ उपलब्ध है, वह साधारण है।

उत्तरमध्यमकाल में फलित ज्योतिषका बहुत विकास हुआ। सुहूर्त्तजातक, संहिता, प्रश्न सामुद्रिकशास्त्र प्रभृति विषयों की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी गयी हैं। इस युग में सर्वप्रथम और प्रसिद्ध ज्योतिषी दुर्गदेव हैं। दुर्गदेव के नाम से यों तो अनेक रचनाएँ मिलती हैं, पर दो रचनाएँ प्रमुख हैं— रिट्ठसमुच्चय और अर्धकाण्ड । दुर्गदेवका समय सन् 1032 माना गया है। रिट्ठसमुच्चय की रचना अपने गुरु संयमदेव के वचनानुसार की है। ग्रन्थ में एक स्थान पर संयम देवके गुरु संयमसेन और उनके गुरु माधवचन्द्र बताए गए हैं। रिट्ठसमुच्चय शौर सेनी प्राकृत में 261 गाथाओं में रचा गया है। इसमें शकुन और शुभाशुभ निमित्तों का संकलन किया गया है। लेखक ने रिष्टों के पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्य नामक तीन भेद किये हैं। प्रथम श्रेणी में अंगुलियों का

टूटना, नेत्रज्योतिकी हीनता, रसज्ञानकी न्यूनता, नेत्रों से लगातार जलप्रवाह एवं जिह्वा न देख सकना आदि को परिगणित किया है। द्वितीय श्रेणी में सूर्य और चन्द्रमा का अनेकों रूपों में दर्शन, प्रज्वलित दीपक को शीतल अनुभव करना, चन्द्रमा को त्रिभंगी रूप में देखना, चन्द्रलांछन का दर्शन न होनी इत्यादि को ग्रहण किया है। तृतीय में निजछाया, परच्छाया तथा छायापुरुष का वर्णन है। प्रश्नाक्षर, शकुन और स्वपन आदि का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

अर्द्धकाण्ड में तेजी-मन्दी की ग्रहयोग के अनुसार विचार किया गया है। यह ग्रन्थ भी 149 प्राकृत गाथाओं में लिखा गया है।

मल्लिसेन– संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके पिता का नाम जिनसेन सूरि था, ये दक्षिण भारत के धारवाड़ जिले के अन्तर्गत गदगतालुका नामक स्थान के रहने वाले थे। इनका समय ई. सन् 1043 माना गया है। इनका आयसद्भाव नामक ज्योतिष ग्रन्थ उपलब्ध है। आरम्भ में ही कहा गया है।

सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत्सम्प्रत्यार्थाभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन।।
ध्वजघूमसिंहमण्डल वृषश्वरगजवायसा भवन्तयायाः।
ज्ञायन्ते ते विद्वद्भिरिहैकोत्तरगणनया चाष्टौ ।।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि इनके पूर्व भी सुग्रीव आदि जैन मुनियों के द्वारा इस विषय की और रचनाएँ भी हुई थीं, उन्हीं के सारांश को लेकर आयसद्भाव की रचना की गई है। इस कृति में 195 आर्याएँ और अन्त में एक गाथा, इस तरह कुल 196 पद्य है। इसमें ध्वज, धूम, सिंह मण्डल, वृष, खर, गज और वायस इस आठों आर्यो के स्वरूप और फलादेश वर्णित है।

भट्टवोसरि— आर्यज्ञानतिलक नामक ग्रन्थ के रचयिता दिगम्बराचार्य दामनन्दी के शिष्य भट्टवोसरि हैं। यह प्रश्न-शास्त्र का

महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें 25 प्रकरण और 415 गाथाएँ हैं। ग्रन्थकर्त्ता की स्वोपज्ञ वृत्ति भी है। दामनन्दी का उल्लेख श्रवणवेल्गोल के शिलालेख नं. 55 में पाया जाता है। ये प्रभाचन्द्राचार्य के सधर्मा या गुरु भाई थे। अतः इनका समय[1] विक्रम संवत् की 11वीं शती है और भट्टवोसरिका भी इन्हीं के आस-पास का समय है।

इस ग्रन्थ में ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, श्वान, वृष, ध्वांस इन आठों आर्यों द्वारा प्रश्नों के फलादेश का विस्तृत विवेचन किया है। इसमें कार्य-अकार्य, हानि-लाभ, जय-पराजय, सिद्धि-असिद्धि आदिका विचार विस्तारपूर्वक किया गया है। प्रश्न शास्त्र की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

उदयप्रभदेव— इनके गुरुका नाम विजयसेन सूरि था। इसका समय ई. सन् 1220 बताया जाता है। इन्होंने ज्योतिष विषयक आरम्भ सिद्धि अपरनाम व्यवहार चर्या ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ पर वि. सं. 1544 में रत्नशेखरसूरि के शिष्य हेमहंसगणि ने एक विस्तृत टीका लिखी है। इस टीका में इन्होंने मुहूर्त्त सम्बन्धी साहित्य का अच्छा संकलन किया है। लेखक ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ग्रन्थोक्तः अध्यायों का संक्षिप्त नामकरण निम्न प्रकार दिया है।

दैवज्ञदीपकालिकां व्यवहारचर्यामारम्भसिद्धिमुदयप्रभदेवानाम् शास्तिक्रमेण तिथिवारमयोगराशि गोचर्यकार्यगमवास्तुविलग्नभिः।

हेमहंसगणि ने व्यवहारचर्या नामकी सार्थकता दिखलाते हुए लिखा है—

व्यवहार शिष्ट जनसमाचारः शुभतिथिवारमादिषु शुभकार्यकरवादिरूपस्तस्यचर्या।।

---

1. प्रशस्ति संग्रह, प्रथम भाग, संपादक—जुगलकिशोर मुख्तार, प्रस्तावना, पृ. 95-96 तथा पुरातन वाक्य सूची को प्रस्तावना, पृ. 101-102।

यह ग्रन्थ मुहूर्त्त चिन्तामणि के समान उपयोगी और पूर्ण है। मुहूर्त्त विषय की जानकारी इस अकेले ग्रन्थ के अध्ययन से की जा सकती है।

राजादित्य— इनके पिता का नाम श्रीपति और माता का नाम वसन्ता था। इनका जन्म कोंडिमण्डल के **यूविनबाग** नामक स्थान में हुआ था। इनके नामान्तर राजवर्म, भास्कर और वाचिराज बताये जाते हैं। ये विष्णुवर्धन राजा की सभा के प्रधान पण्डित थे अतः इनका समय सन् 1120 के लगभग है। यह कवि होने के साथ-साथ गणित और ज्योतिष के माने हुए विद्वान थे। **कर्णाटक कवि चरिते** के लेखक का कथन है कि कन्नड़-साहित्य में गणित का ग्रन्थ लिखने वाला यह सबसे बड़ा विद्वान् था। इनके द्वारा रचित व्यवहार गणितं, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न तथा जैन-गणित सूत्रटीकोदाहरण और लीलावती ये गणित ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

पद्मप्रभसूरि— नागौर की तपागच्छीय पट्टावली से पता चलता है कि ये वादिदेव सूरि के शिष्य थे। इन्होंने भुवनदीपक या ग्रहभावप्रकाश नामक ज्योतिष का ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ पर सिंहतिलक सूरि ने वि. सं. 1336 में एक विवृति लिखी है। **जैन साहित्य नो इतिहास** नामक ग्रन्थ में इन्होंने इनके गुरु का नाम विवुधप्रभ सूरि बताया है। भुवनदीपक का रचनाकाल वि. सं. 1244 है। यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें 36 द्वार-प्रकरण हैं। राशि स्वामी, उच्चनीचदत्व, मित्र-शत्रु, राहु का ग्रह, केतुस्थान, ग्रहों के स्वरूप, द्वादश भावों से विचारणीय बातें इष्टकालज्ञान, लग्न सम्बन्धी विचार, विनष्टग्रह, राजयोग का कथन, लाभालाभ विचार, लग्नेशकी स्थिति का फल, प्रश्न द्वारा गर्भ विचार, प्रश्न द्वारा गर्भ विचार, प्रश्न द्वारा प्रसवज्ञान, यमजविचार, मृत्युयोग, चौर्य ज्ञान, द्रेष्काणादि के फलों का विचार विस्तार से किया है। इस ग्रन्थ में कुल 170 श्लोक हैं। इसकी भाषा संस्कृत है।

नरचन्द्र उपाध्याय— ये कासद्रुहगच्छ के सिंहसूरि के शिष्य थे। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र के कई ग्रन्थों रचना की है। वर्त्तमान में इनके बेड़ा जातक वृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्न चतुर्विंशति का, जन्मसमुद्र टीका, लग्नविचार और ज्योतिष प्रकाश उपलब्ध हैं। नरचन्द्र ने सं. 1324 में माघ सुदी 8 रविवार को बेड़ाजातक वृत्ति की रचना 1050 श्लोक प्रभाव में की है। ज्ञानदीपिका नाम की एक अन्य रचना भी इनकी मानी जाती है। ज्योति प्रकाश, संहिता और जातक सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण रचना है।

अट्ठकवि या अर्हदास— ये जैन ब्राह्मण थे। इनका समय ई. सन् 1300 के आस-पास है। अर्हदास के पिता नागकुमार थे। अर्हदास कन्नड़ भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने कन्नड़ से अट्ठगत नामक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। शक संवत् की चौदहवीं शताब्दी में भास्कर नाम के आन्ध्र कवि ने इस ग्रन्थ का तेलगू भाषा में अनुवाद किया था। अट्ठमत में वर्षो के चिन्ह, आकस्मिक लक्षण, शकुन, वायुचक्र, गृहप्रवेश, भूकम्प, भूजातफल, उत्पात, लक्षण, परिवेषलक्षण, इन्द्रधनुर्लक्षण, प्रथमगर्भलक्षण, द्रोणसंख्या, विद्युतलक्षण, प्रतिसूर्यलक्षण, संवत्सरफल, ग्रहद्वेष, मेघों के नाम, कुलवर्ण, ध्वनिविचार, देशवृष्टि, मासफल, राहुचन्द्र 14 नक्षत्रफल, संक्रान्ति फल आदि विषयों का निरूपण किया गया है।

महेन्द्रसूरि— ये भृगुपुर[1] निवासी मदन सूरि के शिष्य फिरोज शाह तुगलक ने प्रधान सभापण्डित थे। इन्होंने नाड़ीव्रत के धरातल में गोलपृष्ठस्थ सभी वृतों का परिणमन करके यन्त्रराज नामक ग्रह गणित का उपयोगी ग्रन्थ लिखा है। इनके शिष्य मलयेन्द्र सूरि ने इसपर सोदाहरण टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में परमाक्रक्ति 23 अंश 35 कला

---

1. अभूद्भुगपुरे वरे गणकचक्रचूड़ामणि :
कूती नृपति संस्तुतो मदनसूरिनामा गुरुः
तदीयपदशालिना विरचिते सुयन्त्रागमे,
महेन्द्रगुरुणोद्धृताजनि विचारणा यन्त्रजा। यन्त्रराज, अ0 5 श्लोक 67।

मानी गयी है। इसकी रचना शक संवत् 1292 में हुई है। इसमें गणिताध्याय, यन्त्रघटनाध्याय, यन्त्ररचनाध्याय यन्त्रशोधनाध्याय और यन्त्रविचारणाध्याय ये पाँच अध्याय है। क्रमोन्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्याका चापसाधन, क्रान्तिसाधक धुज्याखंडसाधन, धुज्याफलानयन सौम्य गणित के विभिन्न गणितों का साधन, अक्षांश से उन्नताश साधन, ग्रंथ के नक्षत्र ध्रुवादिक से अभीष्ट वर्ष के ध्रुवादिक का साधन, नक्षत्रों के हक्कर्मसाधन, द्वादश राशियों के विभिन्नकृत सम्बन्धी गणितों का साधन, इष्ट शंकु से छायाकरण साधन यन्त्रशोधन प्रकार और उसके अनुसार विभिन्न राशि नक्षत्रों के गणित का साधन, द्वादश भाव और नवग्रहों के स्पष्टीकरण का, गणित एवं विभिन्न यन्त्रों द्वारा सभी ग्रहों के साधन का गणित बहुत सुन्दर ढंग से बताया गया है। इस ग्रन्थ में पंचांग निर्माण करने की विधि का निरूपण किया है।

भद्रबाहुसंहिता अष्टांग निमित्त का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके आरम्भ के 27 अध्यायों में निमित्त और संहिता विषय का प्रतिपादन किया गया है। 30वें अध्याय में अरिष्टों का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का निर्माण श्रुतकेवली भद्रबाहु के वचनों के आधार पर हुआ है। विषय निरूपण और शैली की दृष्टि से इसका रचनाकाल 8-9वीं शती के पश्चात् नहीं हो सकता है। हाँ, लोकोपयोगी रचना होने के कारण उसमें समय-समय पर संशोधन और परिवर्तन होता रहता है।

इस ग्रन्थ में व्यंजन, अंग, स्वर, भौम, छन्न, अंतरीक्ष, लक्षण एवं स्वपन इन आठों निमित्तों का फलनिरूपण सहित विवेचन ग्रहयुद्ध, स्वपन, मुहूर्त, तिथि, करण, शकुन, पाक, ज्योतिष, वास्तु, इन्द्रसम्पदा लक्षण, व्यंजन, चिन्ह, लन्न, विद्या, औषध, प्रभृति सभी निमित्तों के बलाबल, विरोध और पराजय आदि विषयों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। यह निमित्तशास्त्र का बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ है। इससे वर्षा, कृषि, धान्यभाव एवं अनेक लोकोपयोगी बातों की जानकारी प्राप्त की जा सकती हैं।

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि के रचयिता समन्तभद्र का समय 13वीं शती है। ये समन्तभद्र विजयप के पुत्र थे। विजयप के भाई नेमिचन्द्र के प्रतिष्ठातिलक की रचना आनन्द संवत्सर में चैत्रमास की पंचमी को की है। अतः समन्तभद्र का समय 13वीं शती है। इस ग्रन्थ में धातु, मूल, जीव, नष्ट, मुष्टि, लाभ, हानि, रोग, मृत्यु, भोजन, शयन, शकुन, जन्म, कर्म, अस्त्र, शल्य, वृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सिद्धि, असिद्धि आदि विषयों का प्ररूपण किया गया है। इस ग्रन्थ में अ, च ट त प य श अथवा आ ए क च ट प य श इन अक्षरों का प्रथम वर्ग, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग, इ ओ ग ज ड द व ल स इन अक्षरों का तृतीय वर्ग ई औ ध झ भ व ह न अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ण न म अं अः इन अक्षरों को पंचम वर्ग बताया गया है। प्रश्नकर्त्ता के वाक्य या प्रश्नाक्षरों को ग्रहणकर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित और अभिधातित इन पाँचों द्वारा तथा आलंगित अभूधूमित और दग्ध इन तीनों क्रियाविशेषणों द्वारा प्रश्नों के फलाफल का विचार किया गया है। इस ग्रंथ में मूक प्रश्नों के उत्तर भी निकाले गये हैं। यह प्रश्न शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

हेमप्रभ— इनके गुरु का नाम देवेन्द्र सूरि था। इनका समय चौदहवीं शती का प्रथम पाद है। संवत् 1305 में त्रैलोक्यप्रकाश रचना की गयी है। इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध है— त्रैलोक्यप्रकार और मेघमाला।[1]

त्रैलोक्यप्रकाश बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें 1160 श्लोक है। इस एक ग्रंथ के अध्ययन से फलितज्योतिष की अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आरम्भ में 110 श्लोकों में लग्न ज्ञान का निरूपण है। इस प्रकरण में भावों के स्वामी, ग्रहों के छः प्रकार के बल, दृष्टिविचार, शत्रु-मित्र, वक्री-मार्गी, उच्च-नीच, भावों की संज्ञाएँ, भावराशि,

1. जैन ग्रंथावली, पृ. 356

ग्रहबल विचार आदि का विवेचन किया गया है। द्वितीय प्रकरण में योगविशेष धनी सुखी, दरिद्र, राज्यप्राप्ति, सन्तान प्राप्ति, विद्याप्राप्ति आदि का कथन है। तृतीय प्रकरण में विधिप्राप्ति घर या जमीन के भीतर रखे गये धन और उन धन को निकालने की विधि का विवेचन है। यह प्रकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इतने सरल और सीधे ढंग से इस विषय का निरूपण अन्यत्र नहीं है। चतुर्थ प्रकरण योग और पंचम ग्रामपृच्छा है। इन दोनों प्रकरणों के नाम के अनुसार विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न प्राप्ति आदि का कथन है। सप्तम प्रकरण में छठे भाव से विभिन्न प्रकार से रोगों का विवेचन, अष्टम में सप्तम भाव से दाम्पत्य सम्बन्ध और नवम् में विभिन्न दृष्टियों से स्त्री सुख का विचार किया गया है। दशम् प्रकरण में स्त्री जातक-स्त्रियों की दृष्टि से फलाफल का निरूपण किया गया है। एकादश में परचक्रगमन, द्वादश में गमानामन, त्रयोदश में युद्ध, चतुर्दश में सन्धि विग्रह, पंचदश में वृक्ष ज्ञान, षोडश में ग्रह दोष-ग्रह पीड़ा, सप्तदश में आयु, अष्टादश में प्रवहण और एकोनविंश में प्रवृद्या का विवेचन किया है। बीसवें प्रकरण में राज्य या पदप्राप्ति इक्कीसवें में वृष्टि, बाईसवें में अर्धकाण्ड, तेईसवें में स्त्रीलाभ, चौबीसवें में नष्ट वस्तु की प्राप्ति, एवं पच्चीसवें में ग्रहों के उदयास्त, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, महर्घ, समर्घ और विभिन्न प्रकार से तेजी मन्दी की जानकारी बतलाई गयी है। इस ग्रंथ की प्रशंसा स्वयं ही इन्होंने की है[1]

श्रीमद्देवेन्द्रसूरीणां शिष्येण ज्ञानदर्पणः।

विश्वप्रकाशकश्चक्रे श्री हेमप्रभसूरिणा।।

श्री देवेन्द्र सूरि के शिष्य श्री हेमप्रभ सूरि ने विश्वप्रकाशक और ज्ञानदर्पण इस ग्रन्थ को रचा।

मेघमाला की श्लोक संख्या 100 बतायी गयी है। प्रो. एच. डी. वेथंकर ने जैन ग्रन्थावली में उक्त प्रकार का ही निर्देश किया है।

क्रमशः

हरिश्चन्द्र तारा

रानी इस प्रकार करुणापूर्ण विलाप कर रही थी, कि सहसा उन्हें ध्यान आया, कि इस प्रकार रूदन और विलाप से पुत्र के अग्निसंस्कार में न तो किसी प्रकार का लाभ ही हो सकता है और न कहीं से किसी प्रकार की सहायता मिलने की ही आशा है। मेरे पास यह जो पहनने की साड़ी है, क्या इसमें की आधी-साड़ी एक टके से बहुत अधिक मूल्य की होगी, फिर इसमें से आधी साड़ी फाड़कर, एक टके के बदले क्यों न दे दूँ और इसे देकर अपने पुत्र का अग्निसंस्कार क्यों न करूँ? यदि ब्राह्मण को मेरी दशा पर दया आवेगी और वे मुझे कोई दूसरा वस्त्र दे देंगे, तब तो अच्छा ही है, अन्यथा आधी साड़ी से ही मैं अपना तन ढाँके रहूँगी; लेकिन पुत्र को बिना अग्निसंस्कार किये पड़ा रहने देना मातृ-कर्त्तव्य के विरुद्ध है।

इस प्रकार विचारकर, रानी ने अपनी साड़ी में से आधी साड़ी फाड़ी और राजा से कहने लगीं–आप एक टका कर के बदले में यह वस्त्र, जो एक टके से अधिक मूल्य का है, ले लीजिए। अब तो आपको पुत्र का अग्निसंस्कार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है?

पाठकगण! साधारण मनुष्य का ऐसी अवस्था में सत्य से विचलित हो जाना, आश्चर्य की बात नहीं है; लेकिन हरिश्चन्द्र असाधारण पुरुष है, जो इस दशा में भी सत्य से विचलित न हुए। स्त्री की ऐसी दशा देखकर, पुरुष का हृदय पसीज उठना स्वाभाविक है, लेकिन सत्यपालन के लिये राजा का हृदय न मालूम कैसा वज्र का बना हुआ है, जो इस समय भी न पसीजा।

रानी की बात के उत्तर में, राजा ने कहा–तुम्हारे समान सत्य पालने वाली स्त्री वास्तव में धन्य है, जो सत्य की रक्षा के लिए, अपने

पहने हुए वस्त्र में से भी, आधा फाड़कर दे देने में संकोच नहीं करती। इस वस्त्र को लेकर अग्निसंस्कार करने में मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है।

लीजिए नाथ, यदि लज्जा ढाँकने का वस्त्र सत्य की रक्षा के लिये न दूँगी, तो फिर कब दूँगी?— यह कहकर, जैसे ही रानी ने अपने पहनने के वस्त्र में से आधा वस्त्र राजा को दिया और जैसे ही रानी के दिये हुए वस्त्र को राजा ने अपने हाथ में लिया, वैसे ही आकाश में एक दिव्य प्रकाश प्रकट होने के साथ ही देव दुन्दुभी बजने लगी। देवतागण हरिश्चन्द्र और तारा पर पुष्प वर्षाने लगे, तथा दोनों के जयघोष के साथ ही साथ कहने लगे कि तुम्हारे सत्यपालन के व्रत को तुम्हारे माता-पिता को, तुम्हारे मनुष्य जन्म को धन्य है। घोर अँधेरी रात में अन्य किसी की अनुपस्थिति में और अपने पुत्र के अग्निसंस्कार के कार्य में भी सत्य पर दृढ़ बना रहे, तथा धर्म को दगा न दे, ऐसा मनुष्य हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त कौन होगा? कौन ऐसी स्त्री होगी, जो ऐसे विकट समय में भी, अपने पति से धर्म छोड़ने का आग्रह न करे?

आकाश के प्रकाश में पुष्पवृष्टि और वहाँ के शब्दों को सुनकर राजा-रानी आश्चर्य चकित रह गये। उसी समय एक दिव्य-शरीरधारी देव, आकाश से उतरकर राजा और रानी के पास आ खड़ा हुआ। यह वही देव है, जिसने हरिश्चन्द्र को सत्य भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी। इसी देव ने, इन्हें इतने कष्ट में डाला था और अपनी माया से रोहित को साँप से डसाकर, उसे निर्जीव-सा कर दिया था। इस अन्तिम कसौटी में भी राजा को सत्य पर दृढ़ देख, उसका अभिमान चकनाचूर होकर उड़ गया। अब उसने दीनता धारण की और अपने किये पर पश्चाताप करने लगा। शमशान में आकर सबसे पहले उसने रोहित पर से माया हटाई। माया हटते ही, रोहित उठकर उसी प्रकार खड़ा गया जैसे सोकर उठा हो।

अपने समीप, एक दिव्य शरीरधारी देव को खड़ा तथा रोहित को इस प्रकार जीवित हो जाते देख, राजा और रानी का आश्चर्य अत्यधिक बढ़ गया। वे इस बात को न समझ सके, कि यह सब क्या हो रहा है, हमारे समीप यह कौन आ खड़ा हुआ है और मृत रोहित जीवित कैसे हो गया? इतने ही में वह देव नम्रता दिखाता हुआ, राजा और रानी से कहने लगा—आप लोग मुझपर दया करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

देव की इस क्षमा प्रार्थना से तो राजा-रानी के आश्चर्य का और भी ठिकाना न रहा। राजा ने देव से कहा—मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं और आपने मेरा क्या अपराध किया है। कदाचित आपने मेरा कोई अपराध किया भी हो, तब भी मुझे आप पर किसी प्रकार का क्रोध नहीं हो सकता।

राजा की बात के उत्तर में देव अपना परिचय देकर उनसे कहने लगा—महाराज मैं इन्द्र के मुख से आपके सत्य की प्रशंसा सुन, मुझे अपने स्वभावानुसार क्रोध हो आया था। मैंने विचारा, कि इन्द्र हम देवों के सामने मनुष्य की प्रशंसा कैसे करते हैं। मुझे, इन्द्र द्वारा की गई आपकी प्रशंसा असह्य हो उठी और मैंने आपको सत्यभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी। इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए ही, मैंने अप्सराओं को भेजकर, विश्वामित्र का उपवन ध्वंस कराया था और इस तरह विश्वामित्र को कुपित कराकर, आप लोगों को कष्ट में डाला था। रोहित को भी मैंने ही सर्प बनकर डसा था। तथा उसे माया से निर्जीव -सा बना दिया था। मैंने, अब उसपर से अपनी माया उठा ली, इसी से यह उठ खड़ा हुआ है। ये सब कार्य मैंने आपको सत्य से विचलित करने के लिए ही किया था, परन्तु आप इस घोर दुःख के समय भी सत्य से विचलित न हुए। यह देख मेरा अभिमान दूर हुआ है। मैं आपकी सत्य वीरता को समझ चुका हूँ। मैंने अभिमानवश अकारण ही आपको इतने कष्ट दिये हैं, इसके लिए मैं आपसे क्षमा प्रार्थी हूँ। यदि आप, मेरे अपराधों को क्षमा

कर देंगे तब तो ठीक है, अन्यथा मेरे ये पाप मुझे सदा दग्ध करते रहेंगे और मेरी आत्मा को कभी शान्ति न मिलेगी।

देव की बात सुनकर, राजा-रानी को वैसी ही प्रसन्नता हुई, जैसी प्रसन्नता, विद्यार्थी को परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर होती है। राजा ने देव से कहा–मेरे क्षमा करने से यदि आपको शान्ति मिलती है, तो मैं आपको क्षमा करता हूँ। लेकिन आप जिन कार्यों के लिए मुझसे क्षमा चाहते हैं, उन कार्यों के करने से आप मेरे अपकारी नहीं किन्तु उपकारी हैं। यदि आपके द्वारा मेरे सत्य की परीक्षा न होती तो मैं न समझता कि मैं कहाँ तक सत्य का पालन कर सकता हूँ। आपने मेरे सत्य की परीक्षा के लिए स्वर्गसुख छोड़कर कष्ट उठाया, इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं।

देव—आपका यह कथन भी, आपकी महानता का परिचायक है; लेकिन वास्तव में उपकारी मैं नहीं, किन्तु आप हैं। यदि आप इन कष्टों को सहन न करते, तो मुझमें जो अभिमान था, वह भी नष्ट न होता और सत्य पर भी मुझे अश्रद्धा हो जाती है। मुझमें अब तक बहुत ही अभिमान था। मैं अभिमानवश इन्द्र को भी कुछ नहीं समझता था, लेकिन आपने कष्ट सहन करके, मेरे अभिमान का नाश कर दिया। अब मुझमें वह अभिमान किंचित्मात्र भी नहीं रहा, जो कुछ समय पूर्व था। आपने जो कष्ट सहे हैं, वे सब मेरा उपकार करने के लिए ही। आपके इस कष्ट सहन की तपस्या से ही मेरा वह अभिमान नष्ट हुआ है, जो और किसी तरह नष्ट नहीं हो सकता था। मैं, आया तो था आपको कष्ट देने लेकिन मैं उसी प्रकार शुद्ध हो गया, जैसे पारस को काटने वाली छुरी, पारस के स्पर्श से स्वयं ही सोने की बन जाती है। मेरे द्वारा, इतने कष्ट पाने पर भी, आपने मेरे अपराध क्षमा कर दिये, यह आपकी महान् उदारता है। आपके क्षमा करने से, मेरा अज्ञान भी मिट गया और मेरी आत्मा भी पवित्र हो गई।

विश्वामित्र और अवध :

परिवार सहित महाराजा हरिश्चन्द्र के अवध से चले जाने पर,

अवध की दुःखी प्रजा, विवश हो नगर को लौटी। इस समय सबके मुखपर उदासी छाई हुई है। सब अपने नेत्रों से आँसू बहा रहे हैं और मन ही मन, हरिश्चन्द्र के चले जाने से दुःख अनुभव कर रहे हैं। वह नगर जो कल तक रमणीय दिखाई देता था, आज भयंकर जान पड़ता है। वहाँ के निवासी, जो प्रसन्न चित्त रहते थे, आज चिन्तित और दुःखित दिखाई पड़ रहे हैं। जिस बाजार में नित्य व्यापार होता था वहाँ आज झुण्ड की झुण्ड प्रजा एकत्रित होकर यही दुःख-चर्चा कर रही है। सारांश यह कि महाराजा हरिश्चन्द्र के चले जाने से, उनके साथ ही अवध देश की सुन्दरता और अयोध्या की प्रजा की प्रसन्नता भी चली गई है। प्रजा दिन-रात हरिश्चन्द्र के चले जाने की चिन्ता में ही निमग्न रहती है, दूसरा कार्य न तो उसे सूझता ही है, न उसके करने में मन ही लगता है।

प्रजा के मुख्य-मुख्य मनुष्य, एक तो हरिश्चन्द्र के चले जाने से चिन्तित थे ही दूसरे प्रजा की इस अवस्था की चिन्ता ने उन्हें और भी घेर लिया। वे विचारने लगे, कि यदि प्रजा की यही दशा रही तो सारी प्रजा थोड़े ही दिनों में हरिश्चन्द्र की विरहाग्नि में जल मरेगी। हरिश्चन्द्र ने चलते समय जो उपदेश दिया है, उसके अनुसार हमारा कर्त्तव्य है, कि प्रजा की इस चिन्ता को दूर करके, उसे अपने कर्त्तव्य पर पुनः आरूढ़ करे।

इस प्रकार विचार कर, वे मुखिया, प्रजा को समझाने लगे। उन्होंने प्रजा का ध्यान हरिश्चन्द्र के उपदेश की ओर आकर्शित किया और उसे समझाया; कि इस प्रकार हरिश्चन्द्र की चिन्ता करके यदि आप प्राण भी छोड़ दें, तब भी कोई लाभ नहीं है। अतः यही उचित है, कि महाराजा हरिश्चन्द्र के आदेशानुसार रहकर, जीवन व्यतीत करें।

मुखियों के इस प्रकार समझाने-बुझाने पर, प्रजा को कुछ धैर्य हुआ। उधर विश्वामित्र प्रजा के हृदय में हरिश्चन्द्र के प्रति जो सद्भाव है, उन्हें मिटाकर अपना प्रभाव जमाने के लिये कठोरतापूर्वक शासन

करने लगे। उनके शासन से, सभासद्गण रुष्ट हो गये और विश्वामित्र के इस कठोर शासन का प्रतिकार करने के लिए, उन्होंने एक प्रजा-परिषद स्थापित की। विश्वामित्र, प्रजा पर अपना प्रभाव जमाने के लिए जो भी कठोर नियम प्रचलित करते यह परिषद् उनका विरोध करती, तथा सत्याग्रह द्वारा उनके नियम को कार्यरूप में परिणित न होने देती। प्रजा के इस कार्य से, विश्वामित्र दिन-प्रतिदिन और भी अधिक चिढ़ते जाते। चिढ़-चिढ़कर, वे प्रजा पर अपना आतंक जमाने के लिए विशेष अत्याचार करने लगे। प्रजा, उनके अत्याचारों को धैर्य-पूर्वक सहन करती रही। उसने अपने सत्याग्रह अस्त्र को न त्यागा और न विश्वामित्र के ऐसे कार्यों में सहयोग ही किया।

प्रजा के हृदय से, हरिश्चन्द्र के प्रति सद्भाव निकालकर उनकी जगह अपना प्रभाव जमाने के इस प्रयत्न में, विश्वामित्र निरन्तर असफल होते रहे। वे, इसके लिए जो भी कार्य करते, सत्याग्रह द्वारा प्रजा उसका विरोध करती।

विश्वामित्र सत्य को समझते हुए हृदय में तो प्रजा की सराहना करते हैं, परन्तु अपनी हठ पूरी करने के लिए प्रकट में प्रजा पर अन्याय करते ही जाते हैं। कभी-कभी, वे बहुत पश्चाताप करने लगते हैं और कहते हैं, कि मैंने यह क्या किया? अपने आपको ही मैंने इस जाल में फँसा लिया और अब जैसे-जैसे हठ पूर्वक इससे निकलने की चेष्टा करता हूँ, वैसे-ही-वैसे और भी फँसता जाता हूँ। मुझे, क्रोध करने का फल पूर्णरूप से मिल रहा है, यदि मैं क्रोधी न होता, अपने ऊपर क्रोध का आधिपत्य न होने देता, तो आज मेरी यह दशा क्यों होती?

चाहे जैसा अन्यायी मनुष्य हो, उसपर सत्य का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। हरिश्चन्द्र के सत्य से प्रभावित होकर विश्वामित्र, अपने आप ही पश्चाताप करते हैं, कि मैंने हरिश्चन्द्र के साथ बहुत अन्याय किया है। जिसको सत्य से विचलित करने के लिये मैंने अपनी तपस्या का सम्पूर्ण बल लगा दिया, फिर भी जो अपने सत्य से नहीं डिगा, वह

अवश्य ही महान् पुरुष है। ऐसे महान् पुरुष के साथ, मैंने जो व्यवहार किया है, वह नितान्त निन्द्य है। इधर प्रजा पर वे जो कुछ अत्याचार कर रहे हैं, उसका भी उन्हें समय-समय पर पश्चाताप हो ही जाता है।

विश्वामित्र जब किसी प्रकार भी प्रजा के हृदय पर से, हरिश्चन्द्र का आधिपत्य मिटाकर, अपना आधिपत्य न जमा सके और इस ओर से निराश हो गए, तब विवश हो उन्होंने प्रजा को राजसभा में आमंत्रित किया। प्रजा के आ जाने पर, वे कहने लगे मैंने आपके राजा को तथा आपको बहुत ही कष्ट दिया। राजा राज-परिवार और आप लोगों की सहनशीलता अग्नि बनकर मुझे जला रही है। मैं अपने कार्यों के लिए हृदय से पश्चाताप करता हूँ और आप लोगों से क्षमा चाहता हूँ। अब मैं राज्यकार्य छोड़ता हूँ और आपलोगों के प्रिय राजा को भी, बहुत शीघ्र खोज लाता हूँ। आप लोग, उन्हें पुनः अपना राजा बनाकर प्रसन्नता से रहें।

विश्वामित्र की इन बातों को सुनकर, प्रजा वैसे ही प्रसन्न हो उठी, जैसे खोया हुआ धन पुनः मिलने की आशा हो गई हो। सारी प्रजा विश्वामित्र के इस विचार की प्रशंसा करने लगी और उन्हें धन्यवाद देने लगी।

हरिश्चन्द्र को लाकर पुनः राजसिंहासन पर आरुढ़ करने की अभिलाषा को, कार्यरूप में परिणत करने के विचार से विश्वामित्र अयोध्या से काशी की ओर चले। मार्ग में उनके हृदय में अनेक संकल्प-विकल्प होते जा रहे हैं। उनके चित्त में रह-रहकर यह शंका होती है, कि मेरी प्रार्थना पर हरिश्चन्द्र अवध को लौट आवेगें या नहीं? किन्तु जैसे भी होगा, वैसे उनको लाऊँगा अवश्य, यह निश्चय करके, विश्वामित्र अपना मार्ग काटने लगे।

शमशान में सभा :

अत्याचार की भी सीमा होती है। जब अत्याचार सीमातीत हो जाता है, तब वह स्वयं अत्याचारी को ही दुःख देने लगता है। जिस अत्याचार का प्रतिकार सहनशीलता द्वारा किया जाता है, वह अत्याचार, अत्याचारी के लिए ही दुःख देनेवाला बन जाता है। हरिश्चन्द्र को उस

देव ने अनेक कष्ट दिये, इन पर बड़े से बड़े अत्याचार किये, परन्तु हरिश्चन्द्र उन अत्याचारों को धैर्यपूर्वक सहन करते रहे। यहीं कारण है कि वे अत्याचार अब उस अत्याचारी देव को ही दुःख दे रहे हैं। वह अपने अत्याचारों का स्मरण करके आपही जल जा रहा है और हरिश्चन्द्र से क्षमाप्रार्थना कर रहा है।

हरिश्चन्द्र ने अपने कष्टदाता देव को जैसे ही क्षमा प्रदान की, वैसे ही आकाश में पुनः हरिश्चन्द्र और तारा के जयघोष के साथ देव-दुन्दुभी बजने लगी। देखते ही देखते, सारा शमशान देव-देवियों से भर गया और शमशानभूमि सभाभूमि के रूप में परिणत हो गई। देव-देवियों ने, उसी समय हरिश्चन्द्र तारा तथा रोहित को स्नान कराके वस्त्राभूषणों से अलंकृत किये। इसके पश्चात् उन्हें सभा के बीच में रखे हुए रत्न-सिंहासन पर बैठाया और इन्द्र तथा सब देवी-देवता, उनकी स्तुति करने लगे।

पाठकगण! कुछ ही देर पहले हरिश्चन्द्र और तारा अन्धकारमयी रात्रि में, शमशान के मध्य अपने प्रियपुत्र के शोक से दुःखित थे। अब उनको दासत्व मुक्त होने की, कोई आशा न थी। परन्तु थोड़ी ही देर बाद, अन्धकार की जगह प्रकाश और शोक की जगह हर्ष प्राप्त हुआ है। यदि इस समय, राजा और रानी अपने सत्य पर स्थिर न रहते, यदि वे बिना कर लिए ही पुत्र का अग्निसंस्कार करने के लिए तैयार हो जाते, तो न तो उन्हें यह प्रकाश ही मिलता, न आनन्द ही। सारांश यह कि सत्यपालन में इन्होंने जितना कष्ट उठाया है, वह कष्ट सत्यपालन की तपस्या थी और उस तपस्या के फलस्वरूप ही यह प्रकाश और आनन्द प्राप्त हुआ है। सत्यपालन में, कष्ट को धैर्य पूर्वक सहने और उन कष्टों से भयभीत होकर सत्य न छोड़ने का ही यह परिणाम है। किसी ने कहा है—

सन्तोष कड़ुआ अवश्य है, लेकिन फल मीठे ही देता है।

क्रमशः

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 017
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

TITTHAYARA
Vol XXXV No.03
25th June 2011

Registered
No. KOL RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria

Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225